< ४.शंका-समाधान

पुस्तक १, पृष्ठ २३४

१. शंका --- 'तद्भ्रमण ामंतरेण ाशुभ्रमज्जी वानां भ्रमद्भूम्यादिदर्शनानूपत्ते: इति'। इस वाक यका अर्थ मुझे स्पष्ट नही ं हो सका । उसमें पृथ्वी केपरिभ्रमण ाका उल्लेखसा प्रती त होता है । उसका अर्थ खोलकर समझ ानेकी कृपा की जिये। (नेमी चंदजी वकी ल सहारनपुर, पत्र २४-१०-४१)

समाधान --- प्रस्तुत प्रकरण ामें शंका यह उठाई ग ाई है कि द्रव्येन्द्रियप्रमाण ा जी व-प्रदेशोंका भ्रमण ा नही ं होता, ऐसा क यों न मान लिया जाये, क योंकि, सर्वजी व प्रदेशोंके भ्रमण ा माननेपर उनकेशरी रकेसाथ सम्बन्ध-विच्छेदका प्रसंग ा आता है । इस शंकाका उत्तर आचार्य इस प्रकार देते है ं कि 'यदि द्रव्येन्द्रियप्रमाण ा जी व-प्रदेशोंका भ्रमण ा नही ं माना जावे, तो अत्यंत द्रुतग ातिसे भ्रमण ा करते हुए जी वोंको भ्रमण ा करती हुई पृथिवी आदिका ज्ञान नही ं हो सकता है ।' इसका अभिप्राय यह है कि जब कोई व्यक्ति त शी घ्रतासे चक कर लेता है तो उसे कुछ क्ष ाण ाकेलिये अपने आसपास चारों ओरका समस्त भूमंडल पृथिवी , पर्वत, वृक्ष ा, ग ृहादि घूमता हुआ दिखाई देता है । इसका कारण ा पूर्वोक त समाधानमें यह सूचित किया ग ाया है , कि उस व्यक्ति तकेशी घ्रतासे चक कर लेनेकी अवस्थामें उसकेजी वप्रदेश भी शरी रकेभी तर ही भी तर शी घ्रतासे भ्रमण ा करने लग ाते हैं जिसके कारण ा उसे पृथिवी आदि सब घूमते हुए दिखाई देने लग ाते है ं। यदि द्रव्येन्द्रियप्रमाण ा जी वप्रदेशोंको स्थिर माना जाये तो उक त अवस्थामें भूमंडलादिके घूमते हुए दिखनेका कोई कारण ा नही ं रह जाता। इसलिये आचार्य कहते है ं कि 'आत्मप्रदेशोंकेभ्रमण ा करते समय द्रव्येन्द्रियप्रमाण ा आत्मप्रदेशोंका भी भ्रमण ा स्वी कार कर लेना चाहिए।' वर्तमानमें भूभ्रमण ा सम्बन्धी मान्यता प्रचलित है इस शंका-समाधानसे कोई सम्बन्ध नही ं है ।

पुस्तक २, पृ. ४२३.

२. शंका --- नकशा नं. २ में प्राण ाकेखानेमें सयोगि ाकेवली की अपेक्ष ा २ प्राण ा भी होना चाहिए?

(रतनचंदजी मुख्तार, लहारनपुर. पत्र, ३-४-४१)

समाधान --- प्रस्तुत प्रकरण में अपर्याप्त जीवों के सामान्य आलाप बतलाए गए हैं, जिनमें क्रमशः संज्ञी पंचेन्द्रियसे लगाकर एकेन्द्रिय तक के समस्त जीवों की विवक्षा है केवलिसमुद्घात जैसी विशेष अवस्थाओं की यहाँ विवक्षा नहीं है। इसी कारण शंकाकार द्वारा बतलाये गये २ प्राण न मूल टीका में कहे गये, न अनुवाद में लिये गये, और न उक्त नकशे में दिखाये गये। किन्तु पृष्ठ नं, ४४८ नकशा नं. २५ में जहां सयोगिकेवली के ही आलाप बतलाये गये हैं, वहाँपर साधारण अवस्था में होनेवाले चार प्राणों का और विशेष अवस्था में होनेवाले उक्त दो प्राणों का उल्लेख किया ही गया है।

पुस्तक २, पृ. ४३६-४३९

३. शंका --- अर्थ में तथा नकशा नं. १४, १५, १६ और १७ में वेद के आलाप में जो तीन वेद कहे है सो वहाँ ३ भाव वेद कहना चाहिए। (नानकचंदजी खतौली, पत्र ता. १०-११-४१)

समाधान - मूल सिध्दान्त ग्रन्थों में गुणस्थान और मार्गणास्थानों मे जीवों के भावों और अवस्थाओं की अपेक्षा ही विवेचन हुआ है, द्रव्यवेद और द्रव्य लेश्या की चर्चा उत्तर कालीन टीका ग्रन्थों में ही दृष्टिगोचर होती है, इसलिए नकशा नं. १४, १५, १६ और १७ सम्बन्धी आलापों में तथा इससे आगे पीछे के सभी आलापों में भाववेद की ही विवक्षा की गई है। धवलाकारने लेश्या आलापों में जैसे द्रव्यलेश्या और भावलेश्या का विभाग कर पृथक्, पृथक्वर्णन किया है, वैसा वेद आलाप में द्रव्यवेद और भाववेद का विभाग कर मूल में कहीं वर्णन नहीं किया है। अतः उक्त नकशों में भी भाववेद लिखने की आवश्यकता नहीं समझी, यद्यपि तात्पर्य यहाँ तथा अन्यत्र भाववेद से ही है।

पुस्तक २, पृ. ४५४

४. शंका --- पृ. ४५४ यंत्र ३१, में प्राण में अ, लिखा है सो नहीं होना चाहिये? (नानकचंदजी खतौली, पत्र १०-११-४१)

समाधान --- जिन गुणस्थानों या जीवसमासों में पर्याप्त और अपर्याप्त कालसम्बन्धी आलाप सम्भव हैं, उनके सामान्य आलाप कहते समय पाठकों को भ्रम न हो, इसलिए पर्याप्त काल में सम्भव प्राणों के आगे प

लिखा ग या है । तथा अपर्याप्त कालमें सम्भवित प्राणोंकेआग ो अ लिखा ग या है । इसी नियमकेअनुसार प्रस्तुत यंत्र नं. ३१ में नारक सामान्य मिथ्यादृष्टि योंके आलाप प्रकट करते समय प्रर्याप्त अवस्थामें होनेवाले १० प्राणोंके नी चे प औ र अपर्याप्त अवस्थामें सम्भव ७ प्राणोंके आग ो अ लिखा ग या है ।

पुस्तक २, पृ. ६२४

५. शंका --- पृ. ६२४ के विशेषार्थमें यह औ र होना चाहिए कि चौ दहवे ग ुण ास्थानमें पर्याप्तका उदय रहता है , लेकिन नोकर्मवग र्णा नही ं आती ? (रतनचंदजी मुख्तार, सहारनपुर, पत्र ३-४-४१)

समाधान - उक त विशेषार्थमें जो बात सयोगि ाकेवली के लिये कही ग ई है , वह अयोगि ाकेवली के लिये भी उपयुक त होती है । अतएव वहां उक त भावार्थको लेनेमें कोई आपत्ती नही ं ।

पुस्तक २, पृ. ६३८

६. शंका --- यंत्र नं. २५३ के प्राण ाके खानेमें ३, २ भी होना चाहिए। क योंकि, योग ाके खानेमें ६ योग ा लिखे है ं ?

(रतनचंदजी मुख्तार, सहारनपुर, पत्र ३-४-४१)

समाधान --- योग ाकेखानेमें ६ योग ा लिखे जानेसे ३ औ र २ प्राण ा औ र भी कहनेकी आवश्यकता प्रती त होना स्वाभाविक ही है । किन्तु, यहाँपर ६ योग ोंका उल्लेख विवक्ष ाभेदसे ही किया ग या है , जै सा कि मूलके 'अथवा ती न योग ा' इस कथन से स्पष्ट है , औ र जिसका कि अभिप्राय वही पर विशेषार्थमें स्पष्ट कर दिया ग या है (देखो पृ. ६३९) । इसी कारण ा मलमें प्राणोंके खानेमें ३ औ र २ प्राणोंका उल्लेख नही ं किया जानेसे पत्रमें भी नही ं किया है ।

पुस्तक २, पृ. ६४९

७. शंका --- पृ. ६४९ पर काययोग ी अप्रमत्तसंयत जी वोंके आलापमें वेद लिखा है सो यहाँ भाववेद होना चाहिए?

(नानकचंदजी खतौ ली , पत्र १०-११-४१)

समाधान --- इसका उत्तर शंका नंबर ३ में दे दिया ग ाया है ।

पुस्तक २, पृ. ६५५, ६६१

८. शंका --- पृष्ठ ६५५ पर समाधान जो पहला किया ग ाया है उसमें लिखा है कि 'अपर्याप्त योग ामें वर्तमान कपाट समुद्घातग ात सयोगि ाकेवली का पहलेकेशरी रके साथ सम्बन्ध नही ं रहता है । यही पृष्ठ ६६१ पर समाधान करते हुए लिखा है । यह किस अपेक्ष ासे कहा है ? क या समुद्घातमें पूर्व मूलशरी रसे सम्बन्ध छूट जाता है ?

(नानकचंदजी , खतौ ली , पत्र १०-११-४१)

समाधान --- 'अपर्याप्त योग ामें वर्तमान कपाट समुद्घातग ात सयोगि ाकेवली का पहलेकेशरी रकेसाथ सम्बन्ध नही रहता,' इसका अभिप्राय यह लेना चाहिए कि उक त अवस्थामें जो आत्मप्रदेश शरी रसे बाहर फै ल ग ाए है ं, उनका शरी रकेसाथ सम्बन्ध नही ं रहता है । आत्मप्रदेशोंके बाहर निकलनेपर भी यदि शरी रकेसाथ सम्बन्ध माना जायेग ा, तो जिस परिमाण ामें जी वप्रदेश फै ले है ं, उतने परिमाण ावाला ही औ दारिकशरी रका होना मानना पडेग ा। किन्तु ऐसा नही है अत: यह कहा ग ाया है कि कपाट समुद्घातग ात सयोगि ाकेवली का पहलेके शरी रकेसाथ सम्बन्ध नही ं रहता। किन्तु जो आत्मप्रदेश उस समय शरी रकेभी तर हैं , उनसे तो एक अपेक्ष ासे सम्बन्ध बना ही रहता है । इसी प्रकार किसी भी समुद्घातकी दशामें पूर्व मूलशरी रसे सम्बन्ध सर्वथा नही ं छूट ता है । समुद्घातके लक्ष ाण ामें स्पष्ट ही कहा ग ाया है कि मूलशरी रको न छोड़कर जी वके प्रदेशोंके बाहर निकालनेको समुद्घात कहते हैं ।

पुस्तक ३, पृ- २३

९. शंका- २ $^{२ अ}$ की वग र्शिलाका अ होग ी यह शुध्द ज्ञात नही ं होता, क योंकि २ २४ = २५६ होता है , औ र २५६ की वग र्शिलाका ३ है , ४ नही ं ?

समाधान - २ $^{२ अ}$ का अर्थ है २ का २ ^{अ} के प्रमाण ा वग र्। अब यदि हम अ को ४ के बराबर मान ले तो- २ $^{२ अ}$ = २ २४ =२ ^{१६} = २५६ x २५६ = ६५५३६, जिसकी वग र्शिलाका ४ होग ी । शंकाकारने भूल यह की है कि २ २ अ = (२२) अ मान लिया है । किन्तु ऐसा नही है । प्रचलित पध्दतिकेअनुसार २२अ = २$^{(२अ)}$ होता है । अतएव अनुवादमें उदाहरण ारु पसे जो बात कही ग ई है उसमें कोई दोष नही ं है ।

पुस्तक ३. पृ. ३०

१०. शंका --- यहाँ सोलह राशिग ात अल्पबहुत्व निरु पण ामें जो अभव्योंसे सिध्दकालका ग ुण ाकार छह महिनोंके अष्ट म भाग ामें एक मिला देनेपर उत्पन्न हुई समय संख्यासे भाजित अती त कालका अनन्तवां भाग ा कहा है वह अशुध्द प्रती त होता है । मेरी राय में अती त कालको छह माह आठ समयसे भाग ा देनेपर जो लब्ध आवे उसको ६०८ से ग ुण ा करनेपर उत्पन्न हुई राशिका अनन्तवां भाग ा ग ुण ाकार होना चाहिए ? (नेमी चंदजी वकी ल, सहारनपुर, पत्र २४-११-४१)

समाधान --- उक त शंकामें शंकाकारकी दृष्टि उस प्रचलित मान्यता पर है जिसकेअनुसार प्रत्येक छह माह आठ समयमें ६०८ जी व मोक्ष ा जाते है ं । किन्तु धवलामें उक त स्थलपर दिये ग ाये अल्पबहुत्वमें उक त पाठ द्वारा उसकी सिध्दि नही ं होती , जब तक कि उस पाठको विशेषरु पसे परिवर्तित न किया जाये । उक त स्थलका अर्थ करते समय हमारी भी दृष्टि इस बातपर थी । किन्तु उपलब्ध पाठ वै सा होने तथा मूडबिद्री की ताड़पत्री य प्रतियोंके मिलानसे भी उस पाठमें कोई परिवर्तन प्राप्त न होनेसे हम उस पाठको बदलने या मूलको छोड़कर अर्थ करने में असमर्थ रहे । यथार्थत: उक त पाठसे आग े जो सिध्दोंका ग ुण ाकार हमने 'रु पशतपृथक त्व' ग ्रहण ा कर लिया था वह पूर्वोक त दृष्टि से ही केवल एक प्रती के आधार पर किया था। किन्तु दो प्रतियोंमें उसके स्थानपर 'रु पदशपृथक त्व' पाठ था, औ र मूडबिद्री के प्रति-मिलानसे भी इसी पाठकी पृष्टि हुई है । अत: इससे वह संदर्भ औ र भी शंकास्पद औ र विचारण ी य हो ग ाया है । अतएव जब तक कोई स्पष्ट प्रमाण ा इस सम्बन्धका न मिल जावे तबतक उस सम्बन्धमें निर्ण ायात्मक कुछ नही ं कहा जा सकता ।

पुस्तक ३, पृ. ३५

११. शंका --- "रज्जुके अर्धच्छेद उत्तरोत्तर एक एक समुद्रमें द्वी प औ र एक एक समुद्रमें पड़ते है ं, किन्तु लवण ासमुद्रमें दो अर्धच्छेद पडेंग े।" यह बात समझमें नही ं आती । जब घातकी खंडमें एक अर्धच्छेद पडेग ा, औ र लवण ासमुद्र उसका आधा है , तब उसमें दो अर्धच्छेद कै स पड़ जायेंग े ?
(नेमी चंदजी वकी ल, सहारनपुर, पत्र २३-११-४१)

समाधान --- पूर्वोक त शंकाका समाधान रज्जुकेअर्धच्छेदोंकी व्यवस्थाको स्पष्ट त: समझ लेनेसे सहज ही हो जाता है । समस्त तिर्यग ्लोक एक रज्जुप्रमाण ा है । अत: रज्जुको प्रथम वार आधा करनेसे प्रथम अर्धच्छेद जम्बूद्वी पकेमध्यमें मेरु पर पडा। दूसरी वार जब हम रज्जुको आधा करेंग े तो यह दूसरा अर्धच्छेद स्वयंभूरमण ाद्वी पकी परिधिसे कुछ आग े चलकर स्वयंभूरमण ा समुद्रमें पडेग ा, क योंकि उक त समुद्रका विस्तार भी तरकेसमस्त द्वी प-समुद्रोंकेसम्मिलित विस्तारसे कुछ अधिक है । इसी प्रकार रज्जुको ती सरी बार आधा करनेपर ती सरा अर्धच्छेद स्वयंभूरमण ाद्वी पमें उसकी प्रारम्भिक सी मासे कुछ औ र विशेष आग े चलकर पडेग ा। इस प्रकार रज्जु उत्तरोत्तर छोट ा होता जावेग ा औ र उत्तरोत्तर अर्धच्छेद प्रत्येक द्वी प-समुद्रमें पडते जावेंग े किन्तु उनका स्थान उस उस द्वी प-समुद्रकी भी तरी परिधिसे उत्तरोत्तर आग ेको बढ ता जावेग ा। इस प्रकार होते होते अन्तिम समुद्र लवण ासाग ारमें एक अर्धच्छेद उसकी बाह्य सी माके समी प औ र दूसरा उसकी भी तरी सी माके समी प पड जावेग ा। यही बात आग ेके चित्रसे औ र भी स्पष्ट हो जावेग ी ।

मान लो कि स्वयंभूरमण ासमुद्र जम्बूद्वी पसे आग े ती सरे वलयपर है , औ र उसी की बाह्य सी मापर रज्जुका अन्त होता है । रज्जुका प्रथम अर्धच्छेद तो जम्बुद्वी पके मध्यमें मेरु पर पडेग ा ही । अब वहाँसे आग ेका विस्तार पचास हजार योजनेकी १ मान लेनेपर केवल १+४+८+१६=२९ योजन रहा।

जं. द्वी	१.	५	७	९	१३	१७	२१	२५	२९

स. द्वी . स्वयंभूरमण। समुद्र

१ अ. छे ५ अ.छे ४ अ.छे् ३अ. छे. २ अ. छे.

अतएव रज्जुका दूसरा अर्धछेद १४ १/२ योजन पर स्वयंभूरमण।समुद्रमें, ती सरा अर्धच्छेद ७१/४ योजन पर उससे पूर्ववती द्वी पमें, चौ था अर्धच्छेद ३ ५/८ योजन पर लवण।समुद्रकी बाह्य सी माकेसमी प, तथा पांचवां अर्धच्छेद १ १३/१६ योजन पर लवण।समुद्रकी आभ्यंतर सी माके समी प पडेग ा। इस प्रकार हम कितने ही द्वी प समुद्र आग े मान लें तो भी लवण।समुद्रमें अन्ततः दो ही अर्धच्छेद पडेंग े। यही बात त्रिलोकसार की ग ाथा नं ३५२-३५८ में कही ग ई है ।

पुस्तक ३ , पृ. ४४

१२. शंका --- पुस्तक ३ केपृ. ४४ पर क्षेत्राकारके द्वारा जो यह समझाया ग ाया है कि संपूर्ण जी वराशिके वग ाको दूसरे भाग ा अधिक जी वराशिसे भाजित करनेपर ती सरा भाग ाही न जी वराशि प्राप्त होती है , सो यह बात वहाँ दिये ग ाये आकारसे समझमें नही ं आती । कृपया समझाइये ? (नेमी चंदजी वकी ल, सहारनपुर, पत्र २४-११-४१)

समाधान --- मान ली जिये, सर्व जी वराशि १६ है , इसका वग ा हुआ १६ X १६ = २५६ अब यदि हम इस जी वराशिके वग ा (२५६) में जी वराशि (१६) का भाग ा देते है ं तो २५६/१६ = १६ अर्थात् जी वराशि प्रमाण ा ही लब्ध आता है । औ र यदि उसी जी वराशिके वग ामें द्विभाग ा अधिक जी वराशि (१६+८=२४) का भाग ा देते है तो त्रिभाग ाही न जी वराशिप्रमाण ा, अर्थात् ३६-१६ = १० $^{२}/_{३}$ आता है ; जै से २५६/२४ = १० $^{२}/_{३}$.

इसी बातको धवलाकारने क्षेत्रमिति द्वारा भी समझाया है जिसका कि अनुवादके साथ चित्र भी दिया ग ाया है । इस चित्रमें स ड जी वराशि (मानलो १६) है , उसको स ड (१६) से वग ित करनेपर प्रतराकार क्षेत्र स ड स’ ड’ बन जाता है जिसमें अंकप्रमाण ा दिखानेके लिये यहाँ १६X१६ = २५६ खंड किये जाते है ं । इस वग ाक्षेत्रमें जब हम स ड के१६ खंडोंको भाजक

स १६ ड + ८ ड

table

मानते है तो स ड' रु प १६ खंडलब्ध रहते है । पर यदि हम स ड को दो भाग ा अधिक अर्थात् डेवढ ा (२४ खंड प्रमाण ा) कर कर दें, तो उसी वग ाराशि प्रमाण ा क्षेत्रफलको नियत रखनेकेलिये हमें स ड' को त्रिभाग ाही न अर्थात् १०२/३ खंडप्रमाण ा कर लेना पडेग ा, जो जी वराशिका त्रिभाग ाही न (१६ १६/३) भाग ा है । यही आचार्य द्वारा समझाये ग ाये औ र चित्र द्वारा दिखाये ग ाये सिध्दान्तका अभिप्राय है ।

पुस्तक ३, पृ. २७८-२७९

१३. शंका --- यहाँ जी नारकी व स्वग ावासियोंकी राशियां लानेके लिये विष्कंभसूचियां व अव्यवहारकाल बतलाये ग ाये है वे खुदाबंध औ र जी वड्ड ाण ामें न्यूनाधिक क यों कहे ग ाये है ? उनमें समानता माननेमें क या दोष आता है , सो समझ नही पडता । स्पष्ट की जिये?
(नेमी चंदजी , वकी ल, सहारनपुर, पत्र २४-११-४१)

समाधान - खुद्दाबंधमें जो नारकी व देवोंका प्रमाण ा लानेके लिये विष्कंभसूचियां व अवहारकाल कहे ग ाये है वे उन उन जी वराशियोंमें ग ुण ास्थानका भेद न करके सामान्यराशिके लिये उपयुक त है । किन्तु यहाँ जी वस्थानमें ग ुण ास्थान विवक्ष ा है , तथा प्रस्तुतमें अन्य ग ुण ास्थानोंको छोड़कर केवल मिथ्यादृष्टि योंका प्रमाण ा कहा जा रहा है जो सामान्यराशिसे कुछ न्यून होग ा ही । अत: इस न्यून राशिको बतलानेके लिये जी वड्ड ाण ामें उसकी विष्कंभसूची भी खुद्दाबंधमें कथित विष्कंभसूची से कुछ न्यून, तथा अवहारकाल उससे अधिक कहा जाना आवश्यक है । यदि हम खुद्दाबंधमे बतलाये ग ाये सामान्यराशिकी विष्कंभसूची को ही जी वड्ड ाण ामें मिथ्यादृष्टि राशिकी विष्कंभसूची मान ले तो उस समस्त सामान्य जी वराशिका मिथ्यादृष्टि योंमें ही समावेश होकर शेष ग ुण ास्थानोंके उक त देवों व नारकियोंमें अभावका प्रसंग ा आ जायग ा। खुद्दाबंध औ र यहां जी वड्ड ाण ामें विष्कंभसूची औ र अवहारकालको समान मान लेनेमें यही दोष उत्पन्न होता है । >

www.jainworld.com

BACK